

7102

तिथ्यार



जैन भवन

वर्ष ५ अंक १ : मई १९८१



बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

PRAKASH TRADING COMPANY

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

THE BIKANER WOOLLEN MILLS

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

निस्थायर

भमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ५ : अंक १

मई १९८१



संपादन

गणेश लल्लुबानी

राजकुमारी बेनानी



आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया



प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

सूची

महातापस गोभमटेश्वर बाहुबली ५

प्राचीन जैन तीर्थ १७

जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ २७

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३१

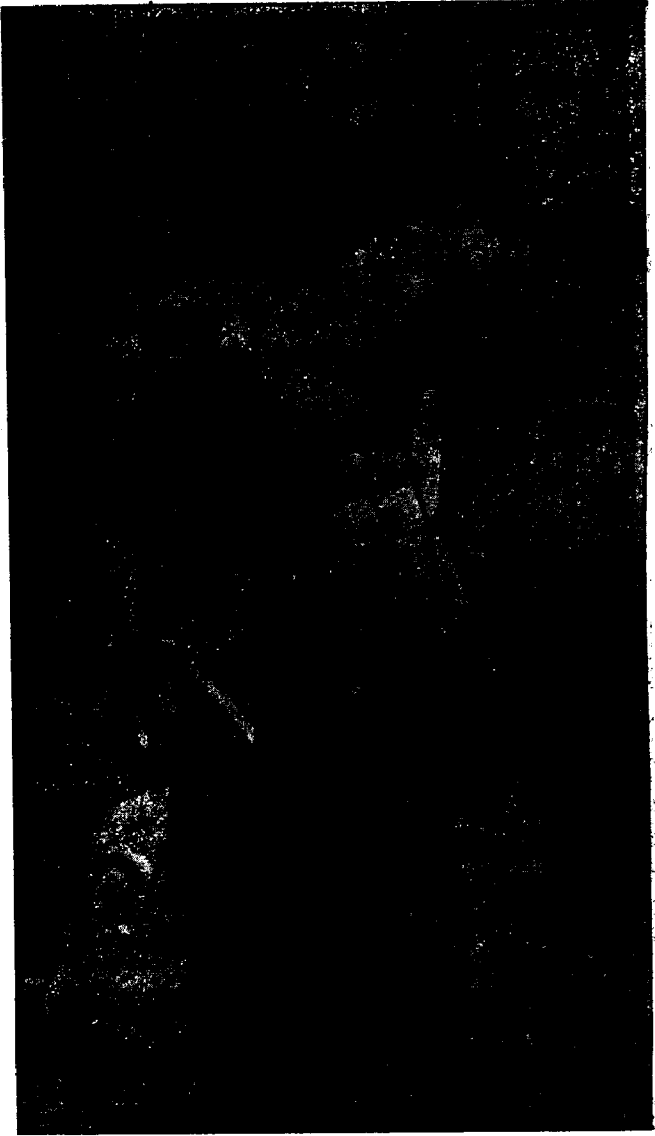


मुद्रक

मुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७



गोम्मटेश्वर बाहुवली, भ्रवण बेलगोल

महातापस गोम्मटेश्वर बाहुबली

डा० यु० पी० शाह

ईसा सन् ६८३ में स्थापित श्रवणबेलगोल स्थित बाहुबली की विशालकाय मूर्ति भी पृथ्वी पर एक विस्मय ही है। जैनगण अधिकांशतः तीर्थंकरों की मूर्तियों की ही उपासना करते हैं, सर्वाधिक सम्मान करते हैं। इनकी तुलना में मन्दिर के अन्य देवी-देवताओं का स्थान तो द्वितीय ही होता है। किन्तु, कठोर तपस्वी बाहुबली जो कि केवल-ज्ञान प्राप्त कर सिद्ध बन गए हैं तीर्थंकरों की भौति ही सम्मान पाते हैं,^१ विशेषकर दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में। श्रवण बेलगोल के गोम्मटेश्वर की मूर्ति का हर बारह वर्ष के व्यवधान में महामस्तका-भिषेक होता है। उस समय वहाँ बहुत से धर्मप्राण जैन उपस्थित होते हैं। इस वर्ष की फरवरी में भी—श्रवण बेलगोल का यही उत्सव अनुष्ठित हुआ है।

उत्तरी भारत में अज्ञात न होते हुए भी दक्षिण भारत में बाहुबली की उपासना अत्यधिक जनप्रिय है। श्वेताम्बरों में तो कल्पसूत्र के मध्य जहाँ ऋषभदेव चरित्र विवृत हुआ है वहाँ बाहुबली का चित्र भी अंकित पाया जाता है।

पाषाण में, धातु में, चित्रकला में अंकित बाहुबली की मूर्ति के विषय में खताने के पूर्व प्रारम्भ काल के जैन साहित्य में जहाँ बाहुबली का जीवनवृत्त मिलता है उसी की आलोचना युक्तिसंगत होगी।

देवी सुनन्दा के गर्भ से जन्म ग्रहण करनेवाले बाहुबली भगवान् ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र थे। बाहुबली की विमाता के पुत्र अप्रज भरत जो कि चक्रवर्ती राजा थे पिता के सिंहासन पर आरोहण कर विनीता से राज्य शासन करते थे।

^१ प्रारम्भकाल के दक्षिण भारत की त्रितीर्थिक मूर्ति में मध्य में पद्मासन पर बैठी जिनमूर्ति, एक ओर कायोत्सर्ग स्थित छोटी जिनमूर्ति, अन्य ओर जिनमूर्ति के स्थान पर कायोत्सर्ग स्थित बाहुबली मूर्ति पायी जाती है।

बहली देश की तक्षशिला बाहुवली की राजधानी थी।^२ दिगम्बर मत के अनुसार बाहुवली की राजधानी थी पोदनस या पोदनपुर।^३

बहुत से देशों को जय कर भरत ने अपने निन्यानबे भाइयों को भी अपना आनुगत्य स्वीकार करने को कहा। अट्टानवें भाई तो संसार परित्याग कर भ्रमण हो गए किन्तु, बाहुवली ने भरत का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया। भरत ने एक विशाल सेना लेकर बाहुवली के राज्य पर आक्रमण किया लेकिन व्यर्थ के रक्तपात निवारण के लिए दोनों भाइयों के मध्य द्वन्द्वयुद्ध द्वारा जय-पराजय का निर्णय करना निश्चित हुआ। पहला था दृष्टियुद्ध। इसमें दोनों को परस्पर एक दूसरे की ओर निष्पलक देखते रहना था। जिसकी पलक पहले झपकेगी वही पराजित हो जाएगा। दूसरा था सुष्टि युद्ध। बाहुवली दोनों ही युद्धों में विजयी हो गए। इससे भयभीत होकर भरत ने द्वन्द्व युद्ध का नियम भंग कर बाहुवली पर चक्र निक्षेप किया। किन्तु चक्र ने बाहुवली पर प्रहार नहीं किया। कारण चक्र प्रयोगकर्त्ता के आत्मीयों का वध नहीं करता। विजय जबकि निश्चित थी बाहुवली ने संसार की नश्वरता, राज्य और चक्रवर्त्तीत्व की असारता उपलब्ध की। अतः भरत को मारने के लिए उठायी गयी सुष्टि से सिर के केश उत्पाटन कर वे युद्धभूमि में ही भ्रमण बन गए। भरत लज्जा और अनुत्ताप से नतमस्तक होकर राजधानी लौट गए। बाहुवली वहीं ध्यान

^२ आवश्यक निर्युक्ति ३२२ के ऊपर की हरिभद्र की आवश्यक वृत्ति, पृष्ठ १४७ और आवश्यक चूर्णि (आवश्यक निर्युक्ति की उसी गाथा के ऊपर), पृ० १८० के मतानुसार तक्षशिला बहली विषय में अवस्थित था।

^३ जिनसेन के आदि पुराण में (३५*२७) इसको पोदनस, रविसेन के पद्म-चरित में (४.६७, पृष्ठ ६१) पोदनपुर और जिनसेन के हरिवंश में (११.७८, पृ० २१२) पोदन कहा गया है। कन्नड़ लेखकों ने इसी धारा का अनुवर्तन किया है। देखिए : के० पी० जैन, 'Podanapura & Takasila', *Jaina Antiquary*, Vol. III (Dec. 1937), पृ० ५७ से। उनका युक्ति तर्क सम्मत नहीं है। यहाँ उल्लेखनीय है कि पद्मचरित में (४.३८, पृ० ३३) बाहुवली की राजधानी को तक्षशिला कहा गया है। श्वेताम्बर लेखकगण इसी धारा का अनुवर्तन करते हैं।

निमग्न हो गए । * कायोत्सर्ग में स्थिर होकर शीत, यीष्म, हवा, वर्षा एवं विद्युत् प्रकोप को समभाव से सहन किया । जंगली भैंसे उनकी देह से अपने शरीर का घर्षण करतीं, हाथी उनके हाथ-पावों को खींचते, गायें उनके शरीर को चाटतीं । हेमचन्द्र की भाषा में * वे सम्पूर्ण रूप में लता गुल्म से आवृत हो गए थे । वर्षा के पंक में घँसे उनके चरणों पर घासें उग आयीं जिनमें सर्प निर्भय होकर विचरण करने लगे । कौबे एवं गौरेये आदि पक्षियों ने उनकी लतावृत देह पर घोंसले बना लिए । सर्प उनके शरीर पर लटक गए । देखने पर लगता जैसे उनके हजार हाथ हों । पौव के पास की बल्मीक से निकल-निकल कर सर्पों ने उनके पावों को जुपर की भौंति वैष्टित कर लिया ।

इसी प्रकार एक वर्ष बीता । किन्तु अभिमान (एक प्रकार का मोहनीय कर्म) के कारण वे केवल-ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके । तब उनके पिता ऋषभ ने अपनी कन्या ब्राह्मी व सुन्दरी को उन्हें सम्बुद्ध करने भेजा । अपनी बहिनों से सम्बुद्ध होकर बाहुबली ने अपनी भूल पहचानी और अभिमान त्याग कर केवल-ज्ञान प्राप्त किया ।^१

* अधिकाधिक ग्रन्थों ने, बाहुबली कहीं ध्वानावस्थित हुए, इसका उल्लेख नहीं किया । देखिए : पञ्चमचरित, ४.५४-५५, आवश्यक निर्युक्ति गाथा ३४ और गाथा ३२-३४, इसके ऊपर का हरिभद्र की आवश्यक वृत्ति, पृ. १५१, आवश्यक चूर्णि, १८० से, आदि पुराण, ३६.१०६-१० । हरिभद्र की आवश्यक वृत्ति, पृ. १५२ और पञ्चमचरित को देखते हुए लगता है कि वे युद्धक्षेत्र में या उसी के निकट ध्वानावस्थित हुए थे । हेमचन्द्राचार्य ने भी यही बात कही है- आदि पुराण में बाहुबली के अकेले विहार की बात आती है । जिनसेन हरिवंश में (११.६८-१०२, पृ. २१४ से) बाहुबली ने एक वर्ष तक कैलाश पर्वत पर तपस्या की, लिखा है ।

^१ *Trisastisalakapurnusacaritra*, Vol. I (अंग्रेजी अनुवाद G. O. Series), पृ. ३२२-२६ ।

^२ ब्राह्मी और सुन्दरी का बाहुबली के निकट जाकर उन्हें हस्ती पृष्ठ (मान) से अवतरण का उपदेश वसुदेवहिण्डी (लम्बक ५, पृ. १८७-८८), हरिभद्र की आवश्यक वृत्ति में (पृ. १५२ से), उद्धृत आवश्यक भाष्य (गाथा ३२-३७) और आवश्यक चूर्णि में मिलता है । हेमचन्द्र और परवर्ती श्वेताम्बर लेखकों ने इसका अनुवर्तन किया है । किन्तु पञ्चमचरित में (४.५४-५५) इतना ही कहा गया है कि उन्होंने तपोबल से केवल-ज्ञान प्राप्त किया ।

प्रारम्भ में दिगम्बर किम्बदन्ती में बहनों द्वारा सम्बुद्ध होने की कथा नहीं मिलती है। वहाँ कहा जाता है कि जो मान और संक्लेश बाहुबली के केवल-ज्ञान की प्राप्ति में बाधक था वह एक वर्ष पश्चात् जब भरत ने आकर उन्हें वन्दन किया तब दूर हो गया।^७ जिनसेन के आदि पुराण में बाहुबली की तपस्या का काल बताया गया है—बाहुबली की बहनों द्वारा प्रबुद्ध होने की किम्बदन्ती यदि होती तो वे निश्चय ही उसका उल्लेख करते।

बाहुबली की यह कठोर तपस्या श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदाय को उनकी उपासना एवं ध्यानमग्न लतावेष्टित कायोत्सर्ग स्थित मूर्ति को स्थापित करने को उद्बुद्ध किया।^८ ब्राह्मण धर्म में इस प्रकार की कठोर तपस्या का जो उदाहरण पाया जाता है वह है ऋषि वाल्मीकि का जिनके चारों ओर वल्मीक और लताएँ उत्पन्न हो गयी थीं।

पण्डित दलसुख मालवणिया ने भरत और बाहुबली के कथानक का क्रमशः बदलता हुआ इतिहास लिपिवद्ध किया है।^९ वे लिखते हैं “जम्बुद्वीप प्रज्ञप्ति ने जो कि अंगवाह्य ग्रन्थ है भरत और बाहुबली का कथानक द्वितीय और तृतीय अध्याय में विवृत किया है। लगता है इस कथानक का प्रारम्भ रूप यही है। कारण यहाँ भरत और ऋषभ पिता-पुत्र हैं इसका कहीं उल्लेख नहीं है। यद्यपि ब्राह्मी और सुन्दरी को ऋषभ संघ की प्रमुख आर्यिका बोला जाता है किन्तु वे ऋषभ की कन्या थीं यह नहीं बताया गया है। यह अवश्य कहा गया है कि ऋषभ ने ‘लेहाइयो’.....‘कलाओ’ की शिक्षा दी थी किन्तु वहाँ ब्राह्मी व सुन्दरी का नाम नहीं है। ऋषभ ने प्रव्रज्या लेने के पूर्व अपना राज्य एक सौ पुत्रों में विभाजित कर दिया यह मिलता है किन्तु वहाँ भी किसी का नाम नहीं मिलता। भरत के दिग्विजय के विषय में कहा गया है कि भरत-क्षेत्र के उत्तरार्द्ध में उन्हें अवाङ्ग चिलायों के द्वारा बाधा प्राप्त हुई किन्तु वहाँ

रविसेन ने उनके पदम चरित में (४.६२-६८, पृ० ६२ से) विमलसूरि के पञ्चमचरित का अनुसरण किया है। हरिवंश में कहा गया है कि भरत ने आकर जब उन्हें वन्दना की तब बाहुबली का मान नष्ट हुआ।

^७ आदि पुराण (भारतीय ज्ञान पीठ), ३६.१८५-८६, भाग २, पृ० २१७।

^८ हरिवंश, ११.६८-१०२, पृ० २१४, आदि पुराण, वसुदेवहिण्डी, आवश्यक चूर्णि में बाहुबली की तपस्या का एक ही प्रकार का वर्णन मिलता है।

^९ *Sambodhi*, Vol. VI Nos. 3-4 (1977-78), पृ० १-११।

भी बाहुबली की कथा का उल्लेख नहीं है। अतः लगता है परवर्ती काल के लेखकों ने ऋषभदेव के साथ भरत, बाहुबली, ब्राह्मी, सुन्दरी, मरीचि आदि का सम्बन्ध निरूपित कर भरत बाहुबली कथानक को नवीन रूप प्रदान किया।”

भरत बाहुबली का कथानक आवश्यक निर्धुक्ति और पठमचरित्र में एक सा ही पाया जाता है।

बाहुबली को वर्तमान अवसर्पिणी का प्रथम कामदेव माना जाता है। आदि पुराण में उनका रंग हरा बताया गया है।^{१०} हरिवंश में उन्हें श्याम मूर्ति कहा गया है एवं उनकी तुलना नरकताचल से की गयी है।^{११}

गोमटेश्वर या गोमटेश्वर नाम से जो सब मूर्तियाँ मिलती हैं वे बाहुबली की हैं। बाहुबली को भुजबली, दोरबली, कुक्कुटेश्वर आदि नामों से अभिहित किया गया है।^{१२} बाहुबली की मूर्ति गोमटेश्वर नाम से क्यों परिचित है वह नहीं कहा जा सकता। फिर भी भवण बेलगोल की विशालकाय मूर्ति ही इस नाम से सर्वप्रथम परिचित हुई। किन्तु प्रारम्भ में क्या श्वेताम्बर क्या दिगम्बर जैन साहित्य किसी में भी बाहुबली को गोमट या गोमटेश्वर नाम से अभिहित नहीं किया गया है। भवण बेलगोल में जो मूर्ति स्थापित है उसका निर्माण चासुण्डराय ने करवाया था। डा० ए० एन० उपाध्ये कहते हैं चासुण्डराय का दूसरा नाम था गोमट। उन्हें गोमटराय कहा जाता था। इसीलिए भवण बेलगोल की बाहुबली मूर्ति को गोमटेश्वर कहा जाता है अर्थात् वे गोमट या चासुण्डराय के ईश्वर हैं। एम० गोविन्द पाइ ने गोमटेश्वर नाम की जो भिन्न व्याख्या की है वह भी उल्लेखनीय है। बाहुबली अतीव सुन्दर थे। जैन किम्बदन्ती में उन्हें कामदेव कहा जाता है। पाइ के मत से कन्नड़ भाषा में गोमट का अर्थ मन्मथ अर्थात् कामदेव होता है।^{१३}

^{१०} आदि पुराण, ३५, गाथा ५३।

^{११} हरिवंश, ११.७६-१०२, पृ० २१२ से।

^{१२} उपाध्ये, ए० एन०, *Bharatiya Vidya*, Vol. II No. 1, पृ० ४८।

^{१३} पाइ, एम० गोविन्द, 'श्री बाहुबली की मूर्ति गोमट क्यों कहलाती है', जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ४ संख्या २, पृ० १०२-१०६। इस समस्या के ऊपर देखिए : मित्र, के० पी०, *Jaina Antiquary*, Vol. VI No. 1, पृ० २६-३४, शास्त्री, एच० ए० शान्तराजा, जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ७ संख्या १, पृ० ५१, उपाध्ये, ए० एन०, *I. H. Q.*, Vol. XVI No. 2, पाइ, एम० गोविन्द, *I. H. Q.*, Vol. XVI No. 2, पृ० २७०-८६, आर० नरसिंहाचारियार, *Epigraphia Carnatica*, Vol. VII (Revised), Introduction, पृ० १५-१८।

बाहुबली का विवरण कल्पसूत्र में नहीं पाया जाता कारण वहाँ तो मात्र जिन चरित्र ही वर्णित हुए हैं। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ने भी चक्रवर्ती भरत की दिग्विजय का तो विशदभाव से वर्णन किया है। किन्तु भरत बाहुबली द्वन्द्व के विषय में वह भी मौन है। इस घटना का सर्वप्रथम उल्लेख हम पाते हैं आवश्यक निर्युक्ति की ३४६ वीं गाथा में एवं भाष्य गाथा ३२-३५ में। इसका और भी विशद वर्णन मिलता है वसुदेवहिण्डी (खः पंचम शताब्दी) में। वसुदेव-हिण्डी का समय आवश्यक भाष्य के प्रायः समकालीन है। विमलसूरि के पद्मचरित्र का विवरण संक्षेप में है। इस विवरण में बाहुबली का अभिमान नष्ट करने के लिए ब्राह्मी सुन्दरी का उल्लेख न होने के कारण कहा जा सकता है इस विवरण ने पूर्णतः श्वेताम्बर मत का अनुसरण नहीं किया। पद्मचरित्र में मात्र इतना ही कहा गया है कि बाहुबली ने तपोबल से केवल-ज्ञान प्राप्त किया। रविसेन के पद्म चरित में भी इसी कथा की ही पुनरावृत्ति है।

आवश्यक निर्युक्ति की गाथा ३३२ से^{१४} अन्य प्रसंग में बाहुबली की कथा विवृत हुई है। वहाँ कहा गया है ऋषभदेव जब तक्षशिला जाते हैं तो वे सन्ध्या के पश्चात् नगर में प्रवेश करते हैं। बाहुबली ने दूसरे दिन प्रातःकाल सपरिकर उनके दर्शन और वन्दना करने जाना स्थिर किया। किन्तु भगवान उसी रात्रि को तक्षशिला का परित्याग कर बहुलिय, अमम्बिल, योनक होते हुए वहलि योनक, पहलग के निकट भर्म प्ररूपणा की। फिर अष्टापद चले गए। इसके बहुत वर्षों बाद वे विनीता के पुरिमताल में आए थे। वहीं उन्होंने केवल-ज्ञान प्राप्त किया।

दूसरे दिन बाहुबली को जब ज्ञात हुआ कि भगवान आकर चले भी गए तो वे बहुत दुःखी हुए। जहाँ भगवान कायोत्सर्ग में खड़े हुए थे उन्होंने वहाँ आकर उस स्थान की पूजा की एवं वहाँ एक भर्मचक्र स्थापित किया। वसुदेव-हिण्डी और पद्मचरित्र में इसका उल्लेख नहीं मिलता है फिर भी बृहत्कल्प भाष्य की ५८२४ की गाथा में इसका उल्लेख है।

यह तो मैं पूर्व ही कह आया हूँ दिगम्बर सम्प्रदाय में बाहुबली मूर्ति की उपासना बहुत जनप्रिय है। बाक्षिणात्य की तीन बृहत्काय मूर्तियाँ भारतीय कला रचिकों की सुपरिचित हैं। इनमें भी जो मूर्ति सबसे बड़ी है उसकी लम्बाई ५६' ६" है। कर्नाटक राज्य के अवणबेलगोल में ब्राह्मणद्वारा द्वारा

निर्मित यह मूर्ति अनुमानतः ६८१-८३ खृष्टाब्द में स्थापित हुई।^{१५} दूसरी प्रतिमा की ऊँचाई ४१' ६" है। यह कर्नाटक के कारकल में^{१६} १४३२ खृष्टाब्द में स्थापित हुयी थी। तृतीय की ऊँचाई ३५' है। यह भी कर्नाटक के बेणुर में^{१७} १६०४ खृष्टाब्द में स्थापित हुयी। इनके पहले की पहाड़ पर खोदी हुई पाषाण मूर्तियों की कथा हम जानते हैं। परवर्तीकाल की ब्रोंज की छोटी बाहुबली मूर्ति तो प्रायः प्रत्येक दिगम्बर मन्दिर में ही पायी जाती है।

एल्लोरा की विभिन्न गुफाओं में बाहुबली की चार मूर्तियाँ खृष्टीय नवीं शताब्दी से उत्कीर्ण हुई हैं। यहाँ एक मूर्ति में^{१८} बाहुबली के स्कन्धों पर जटाएँ गिरी हुई हैं, वे लता परिवृत ध्यानमग्न हैं। उनके दोनों ओर ब्राह्मी व सुन्दरी खड़ी हैं। दाहिने पाशों के समीप करवद्ध भरत बैठे हुए हैं। बाहुबली के मस्तक पर दिव्य छत्र है एवं मस्तक के दोनों ओर स्वर्गीय वादकदल और गन्धर्व हैं। इसमें प्रत्यक्षतः बाहुबली को केवल-ज्ञान की प्राप्ति अंकित है। ब्राह्मी और सुन्दरी की उपस्थिति इसलिए उल्लेखनीय हो जाती है क्योंकि हरिश्चन्द्र, रविसेन के पद्मचरित एवं जिनसेन और गुणभद्र के महापुराण में इनका उल्लेख नहीं है। ब्राह्मी और सुन्दरी का उल्लेख श्वेताम्बर साहित्य में ही पाया जाता है किन्तु एल्लोरा की गुफा तो दिगम्बरों द्वारा ही खोदित है। भरत जो करवद्ध होकर भस्त्रा निवेदन कर रहे हैं वह तो पूर्व दिगम्बर साहित्य के ही अनुरूप है। बाहुबली के पाँवों के नीचे के पद्म के सामने जो हरिण दिखाया

^{१५} देखिए : शर्मा, एस० आर०, 'Jain Art in South India', *Jaina Antiquary* (Arrah, Dec 1915), Vol. I No. 3, पृ० ४२ से, कुमार-स्वामी, ए०के०, *History of Indian and Indonesian Art*, पृ० ११६, Krishna, M. H., 'The Art of the Gommata Colossus', *All India Oriental Conference, 7th Report*, पृ० ६६० से इत्यादि।

^{१६} के० भुजबली शास्त्री, 'कारकल का गोम्मटेश्वर', जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ५ संख्या २, पृ० ६२ से।

^{१७} एम० गोविन्द पाई, 'Venur and its Gommata Colossus', *Jaina Antiquary*, Vol. II No. 2, पृ० ५२ से।

^{१८} शाह, यु० पी०, 'A Miniature Painting of Bahubali', *Prachya Pratibha*, Vol. III No. 1, पृष्ठ १५ से। चित्र ३ (एल्लोरा गुहा न० ३२)।

गया है वह लाञ्छन नहीं है बल्कि यह बतलाया गया है कि बाहुबली के समीप मृक पशु भी निर्भय रूप से विचरते थे। वह हरिण बाहुबली की तपस्या के शान्त परिवेश को ही स्मरण करवाता है।

पहले की पहाड़ पर खुदी हुई इस प्रकार की और भी मूर्तियाँ पायी जाती हैं। ऐसी ही एक मूर्ति वादामी की जैन गुफा में है, दूसरी वृहद् परिकर में खुदी आइहोल की^{१९} गुफा में है। वादामी की गुफा में स्वर्गीय बावकदल अनुपस्थित है किन्तु ब्राह्मी और भरत दिखलाए गए हैं। वादामी की मूर्ति ख्रिष्टीय अष्टम शताब्दी की एवं आइहोल की मूर्ति कुछ पश्चात् की है।

दक्षिण भारत में बाहुबली की मूर्ति प्रायः सर्वत्र ही मिलती है। तिन्नेभेली जिले के काखगुमालाई की एक गुफा में कुछ जैन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं। इनमें पार्श्वनाथ की जो प्रतिमा है वह ख्रिष्टीय नवम् शताब्दी की बतायी जाती है। इस प्रतिमा के साथ ही बाहुबली की एक कायोत्सर्ग ध्यानावस्थित ब्राह्मी व सुन्दरी सहित प्रतिमा उत्कीर्ण है। यह विषय मदुरा जिले के किलक्कुडि, चम्भन्नमालाई के पहाड़ों पर और तामिलनाडु के आन्नमालाई के समनरकोइल के समीप वृहद् प्रस्तर पर खुदी हुई है।^{२०} परवर्तीकाल की महाराष्ट्र स्थित मांगी-तुंगी और आंकाई-टांकाई की गुफा में भी बाहुबली की मूर्तियाँ हैं।

आइहोल की जैन गुफा में नग्न बाहुबली कायोत्सर्ग ध्यान में अवस्थित है। उनके हाथ-पाँवों में लताएँ लिपटी हुई हैं और पाँवों के पास बल्मोक से निकलकर साँप फन फैलाए हुए हैं। उनके पार्श्व में राजकन्या के परिधान में मस्तक पर मुकुटधारण किए अलंकारों से सजित ब्राह्मी व सुन्दरी खड़ी हुई हैं। पीछे है वृक्षराजि, मस्तक पर चढ़ते हुए गन्धर्व। बाहुबली को केवल-ज्ञान हुआ ही है और वे लोग उन्हें अपनी भद्रा निवेदित कर रहे हैं। माये की जटा समान्तराल से उनके कन्धों पर गिर रही है। सुख किंचित डिम्बाकृति और पूर्ण है। आँखें आधी खुली हैं। मूर्ति बहुत सुन्दर भाव से खुदी हुई है। विशेषकर पाँवों का ऊपरी भाग। स्कन्ध गोलाकृति एवं कुछ कठोर भाव लिए हैं। यह कठोर भाव ब्राह्मी और सुन्दरी की मूर्ति में भी है।

^{१९} Rambach and Golish, *Golden Age of Indian Art*, Bombay, 1955, चित्र ३४।

^{२०} देखिए : शाह, यु० पी०, 'Bahubali : A Unique Bronze in the Museum', *Bulletin of the Prince of Wales Museum*, Bombay, 1953-54, No. 4, पृ० ३२ से।

उत्तर भारत में बाहुबली की मूर्ति उतनी सुप्राप्य नहीं है फिर भी मध्य-कालीन कुछ मूर्तियाँ प्राचीन ग्वालियर राज्य, देवगढ़ और खजुराहो से प्राप्त हुई हैं।

लेखक ने खजुराहो के मन्दिर की कुलिका स्थित बाहुबली की कायोत्सर्ग में खड़ी एक मूर्ति प्रकाशित की है।^{२१} यह मूर्ति विन्ध्य पर्वत के उत्तर से प्राप्त प्राचीनतम बाहुबली की मूर्तियों में एक है और इसमें कुछ अभिनवत्व भी है। प्रथमतः इसमें बाहुबली को सिंहासन पर दण्डायमान दिखाया गया है। द्वितीयतः ब्राह्मी और सुन्दरी के अतिरिक्त दोनों ओर दो परिचारिकाएँ भी हैं। तृतीयतः मस्तक के प्रभा-मण्डल के दोनों पार्श्व से दो हाथी उनका अभिषेक कर रहे हैं। अनुमानतः मूर्ति ग्यारहवीं शताब्दी की है।

गुजरात में तो दिगम्बर परम्परा की मूर्ति दिखाई ही नहीं पड़ती। इसका कारण पाटन में चालुक्य राजसभा में बादी देवसूरि से दिगम्बर सन्त कुमुदचन्द्र की पराजय के पश्चात् इस राज्य में दिगम्बर सम्प्रदाय का हास होने लगा था। किन्तु खोभाखवशतः सौराष्ट्र के प्रभास पाटन^{२२} से सुन्दर किन्तु खण्डित बाहुबली की एक प्रतिमा पायी गई है। पाँवों के पास की वल्मीक और सर्प उल्लेखयोग्य हैं। मस्तक पर एक वृक्ष की शाखा-प्रशाखाएँ विस्तृत हैं। ब्राह्मी और सुन्दरी यहाँ नहीं दिखाई गई हैं। वस्तुतः समस्त भारत के दिगम्बर मन्दिरों में स्थित परवर्ती काल की बाहुबली की धातु प्रतिमाओं में कहीं भी दोनों बहनों को नहीं दिखाया गया है।

देवगढ़ में प्राप्त बाहुबली की एक छोटी पाषाण मूर्ति दिल्ली के जैन संग्रह में है।^{२३}

^{२१} चित्र के लिए देखिए : शाह, यु० पी०, 'A Miniature Painting of Bahubali', *Prachya Pratibha*, Vol. III No. 1, (January 1975), चित्र ५।

^{२२} वही, चित्र ४।

^{२३} मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी *East & West* की एक संख्या में 'Some More Images of Bahubali from North India' प्रकाशित किए हैं।

पटनचेरी, आन्ध्रप्रदेश प्रांत बाहुबली की एक वृहद् काले पत्थर की मूर्ति हैदराबाद म्युजियम में सुरक्षित है। २४ बाहुबली के दोनों पार्श्व में स्थित दोनों बहिर्नों की प्रतिमा जैन साध्वी के रूप में नहीं है, दोनों को सुन्दर राजकन्या के रूप में दिखाया गया है। सन्तुलन बनाए रखने के लिए शिल्पी ने बाहुबली के मस्तक के दोनों ओर दीर्घ लतावृत्त का सृजन किया है। बाहुबली को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ है बताने के लिए सम्भवतः इन दोनों वृत्तों के मध्य विद्याघर अंकित किए हैं। चालुक्य युग की यह एक सुन्दर कलाकृति शायद ग्यारहवीं शताब्दी की है।

आबू के विमलवसही के सभा-मण्डप के मुख्य अलिन्द की छत पर भरत और बाहुबली की समग्र कहानी क्षुद्राकृति में अंकित है। इसमें बाहुबली की तपस्या और केवल-ज्ञान प्राप्ति दिखाया गया है। मण्डप बारहवीं शताब्दी में कुमारपाल के मन्त्री द्वारा निर्मित है।

बाहुबली की एक सुन्दर चातु मूर्ति भवण बेलगोल के क्षेत्र में पायी गयी थी जो कि वर्तमान में बम्बई के प्रिन्स आफ वेल्स म्युजियम में संरक्षित है। मूर्ति गोलाकार और २०" दीर्घ है। लताएँ उनके पैर, जाँघ और बाहुओं को वेष्टित करती हुई ऊपर जा रही हैं। केश समान्तराल भाव से पीछे की ओर चलते हुए पीठ और कंधे पर न्यस्त हैं। मुख ईषत डिम्बाकृति किन्तु पूर्ण है। कण्ठ सुदृढ़ भाव से खोदित है। विशाल स्कन्धों से लटकते हुए दीर्घ बाहु शरीर के छन्द में छन्दायित हैं। अनुपम है मूर्ति का शिल्प चातुर्य। सम्भवतः यह मूर्ति आठवीं या नवीं शताब्दी की है।

शत्रुंजय पहाड़ के उपरस्थ एक कुलिका में बाहुबली की एक कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित मूर्ति है। उनके पैरों से लताएँ उठ रही हैं और ब्राह्मी, सुन्दरी दोनों ओर खड़ी हुई हैं। पीठिका के लेख के अनुसार यह मूर्ति १३६१ विक्रमान्द या १३१४ ख्रिष्टान्द में स्थापित है। यहाँ उल्लेखयोग्य यही है कि यह और आबू की बाहुबली की मूर्ति वस्त्र पहने हुए दिखायी गयी है। श्वेताम्बर मन्दिरों में बाहुबली की मूर्ति प्रायः नहीं होती। कठिन तपश्चर्या के लिए बाहुबली को नग्न दिखाना होगा अतः समय सम्प्रदाय के वैमनस्य के कारण श्वेताम्बर सम्प्रदाय नग्नमूर्ति की उपासना करने में अनिच्छुक होने के कारण श्वेताम्बर सम्प्रदाय बाहुबली की मूर्ति प्रतिष्ठा के प्रति अनाग्रही है। श्वेताम्बर नग्न मूर्ति स्थापित व उसकी पूजा नहीं करते।

छुद्राकृति में (Miniature Painting) भी बाहुबली और भरत की कहानी बहुत कम अंकित हुई है। १५२२ सम्वत् में जौनपुर में चित्रित कल्पसूत्र, पृ० ६० में इस प्रकार के चित्र मिलते हैं। यह पुस्तक वर्तमान में बड़ौदा के ज्ञान भण्डार में मुनि हंस विजय संग्रह में रक्षित है। चित्र जैन-कल्पद्रुम, भाग १ चित्र संख्या १८१ में प्रकाशित हुआ है। यह चित्र चार भागों में विभक्त है। ऊपर के प्रथम भाग में भरत और बाहुबली का दृष्टियुद्ध और वाक्युद्ध दिखाया गया है। द्वितीय भाग में मुष्टियुद्ध और दण्डयुद्ध दिखाया है। तृतीय भाग के प्रथमांश में भरत बाहुबली के सम्मुख चक्रधारण किए खड़े हैं। द्वितीयांश में बाहुबली का मुकुट धरती पर गिर रहा है। जैन मान्यतानुसार चक्र स्वजन को निहत नहीं करता। चतुर्थ अर्थात् शेष भाग में वस्त्र परिहित बाहुबली ध्यानावस्थित है, उनके दोनों ओर दो वृक्ष हैं। पावों के समीप की बलमीक से सर्प निकलकर उनके हाथों को वेष्टित कर रहे हैं। पक्षीगण उनके स्कन्धों पर आ बैठे हैं। बायीं ओर दो साध्वियाँ ब्राह्मी और सुन्दरी करवद्ध होकर उन्हें अभिमान परित्याग करने को कह रही हैं। इस चित्र में बाहुबली और भरत को सुनहले रंग से चित्रित किया गया है।

एक तालपत्र की पुस्तक के ऊपर काष्ठ पट्टिका में भरत और बाहुबली का द्वन्द्वयुद्ध एवं बाहुबली की प्रव्रज्या और तपस्या दिखाई गई है। डा० मोतीचन्द्र ने इसे अपने *Jain Miniature Painting from Western India* ग्रन्थ में प्रकाशित किया है। (चित्र १९६-२००) यहाँ बाहुबली को वस्त्र परिहित दिखाया गया है कारण पट्टिका श्वेताम्बर सम्प्रदाय की है और जेसलमेर के ज्ञान भण्डार से प्राप्त है। वर्तमान में यह हरिदास सवाली के संग्रह में रक्षित है। उन्होंने इसे सराभाई, एम० नवाब से खरीदा है।

बैवसाना पाड़ा के भण्डार में सचित्र कल्पसूत्र में भी बाहुबली का एक विशेष चित्रलेखयोग्य चित्र मिलता है। अभी यह नई दिल्ली के नेशनल म्यूजियम में (नं० ७०.६४)^{२५} रक्षित है। यहाँ बाहुबली को कायोत्सर्ग ध्यानावस्थित दिखाया गया है। वे छुटने तक वस्त्र परिवृत हैं। हाथ में अंगद और वलय पहन रखा है। इसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि वे युद्ध-क्षेत्र में ही युद्ध करते-करते ध्यान निरत हो गए हैं। उनके सिर के केश खूब बढ़े हुए हैं। उनमें लता, पत्र, पक्षी, पंख आदि हैं। इस प्रकार समझाया गया

^{२५} शाह, यु० पी० कतुक *Prachya Pratibha* में प्रकाशित चित्र १।

है कि पक्षियों ने वहाँ घोंसले बना लिए हैं। दीर्घ दाढ़ी में भी पक्षी दिखाकर यही बताया गया है। दोनों ओर के पैरों के पास पशु-पक्षी आदि चित्रित हैं। पैरों के चारों ओर लताएँ लिपटी हुई हैं। बाहुबली के मस्तक के दोनों ओर दो आदमियों के चित्र हैं जो कि साधवी-से नहीं साधु जैसे लगते हैं। वे दोनों हाथ जोड़कर खड़े हैं। उनकी कौंख में रजोहरण है। जिस प्रकार उन्होंने वस्त्र पहन रखे हैं उससे दोनों को विशेषकर बाहिने ओर के व्यक्ति को तो जैन साधु ही कहा जा सकता है। बायीं ओर के व्यक्ति को साधवी भी कह सकते हैं कारण उसके वक्ष देश पर वृत्त अंकित किया गया है। Norman Brown के *Miniature Paintings of Kalpa Sutra* में ११६ नं० के चित्र में इस प्रकार के चित्र को ब्राह्मी और सुन्दरी का बताया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में ऊपर का चित्र भी जब बाहुबली का है तो उसे साधु न कहकर साधवी ब्राह्मी व सुन्दरी कहना ही उचित है। यह कल्पसूत्र संभवतः १४७५ ख्रिष्टाब्द का है।

प्राचीन जैन तीर्थ

पण्डित कल्याण विजय गणी

सपक्रम

पूर्वकाल में 'तीर्थ' शब्द मौलिक रूप से जैन प्रवचन अथवा चतुर्विध संघ के अर्थ में प्रयुक्त होता था, ऐसा जैन आगमों से ज्ञात होता है। जैन प्रवचनकर्त्ता और जैन संघ के संस्थापक होने से ही जिनदेव तीर्थकर कहलाते हैं।

तीर्थ का शब्दार्थ यहाँ नदी समुद्र में उतरने अथवा उनसे बाहर निकलने का सुरक्षित मार्ग होता है। आज की भाषा में इसे घाट और बन्दर कह सकते हैं।

संसार समुद्र को पार कराने वाले जिनागम को और जैन भ्रमण संघ को भावतीर्थ बताया गया है, और इसकी व्युत्पत्ति 'तीर्यते संसार सागरो येन तत् तीर्थम्' इस प्रकार की गई है, एवं नदी समुद्रों को पार कराने वाले तीर्थों को द्रव्य तीर्थ माना गया है।

उपर्युक्त तीर्थों के अतिरिक्त जैन आगमों में कुछ और भी तीर्थ माने गए हैं, जिन्हें पिछले ग्रन्थकारों ने स्थावर तीर्थों के नाम से निर्दिष्ट किया है, और वे दर्शन की शुद्धि करने वाले माने गए हैं। इन स्थावर तीर्थों का निर्देश आचारांग, आवश्यक आदि सूत्रों की निर्युक्तियों में मिलता है, जो मौर्यकालीन ग्रन्थ हैं।

(क) जैन स्थावर तीर्थों में (१) अष्टापद (२) उज्जयिन्त (३) गजाग्रपद (४) धर्मचक्र (५) अहिच्छन्न पार्श्वनाथ (६) रथावर्त पर्वत (७) चमरोत्पात (८) शत्रुंजय (९) सम्मेद शिखर और (१०) मथुरा का देव निर्मित स्तूप इत्यादि तीर्थों का संक्षिप्त अथवा विस्तृत वर्णन जैनसूत्रों तथा सूत्रों की निर्युक्ति व भाष्यों में मिलता है।

(ख) (१) हस्तिनापुर (२) सौरीपुर (३) मथुरा (४) अयोध्या (५) काश्र्मिण्यपुर (६) वाराणसी (काशी) (७) भावस्ती (८) क्षत्रिय कुंड (९) मिथिला (१०) राजगृह (११) अपापा (पावापुरी) (१२) महिलपुर (१३) चम्पापुरी (१४) कौशाम्बी (१५) रत्नपुर (१६) चन्द्रपुरी आदि स्थान भी तीर्थकरों की जन्म, दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण की भूमियाँ होने के कारण जैनो

के प्राचीन तीर्थ थे । परन्तु, वर्तमान समय में इनमें से अधिकांश विलुप्त हो चुके हैं । कुछ कल्याणक भूमियों में आज भी छोटे-बड़े जिन-मन्दिर बने हुए हैं और यात्रिक लोग दर्शनार्थ जाते भी हैं परन्तु इनका पुरातन महत्व आज नहीं रहा । इन तीर्थों को 'कल्याणक भूमि' कहते हैं ।

(ग) उक्त तीर्थों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी स्थान जैन तीर्थों के रूप में प्रसिद्ध हुए थे जिनमें से कुछ के तो आज नाम शेष हो चुके हैं, और कुछ विद्यमान भी हैं । इनकी संक्षिप्त नाम सूची यह है—(१) प्रभास पाटन—चन्द्रप्रभ (२) स्तम्भ तीर्थ—स्तम्भनक पार्श्वनाथ (३) भृगुकच्छ अश्वाम्बोध शकुनिका बिहार—सुनि सुवत (४) सूरपार्क (नालासोपारा) (५) शंखपुर—शंखेश्वर पार्श्वनाथ (६) चारुप—पार्श्वनाथ (७) तारंगहिल—अजितनाथ (८) अर्बुदगिरि (आर्बु मासन्ट) (९) सत्यपुरीय—महावीर (१०) स्वर्णगिरि—महावीर (११) करहेटक—पार्श्वनाथ (१२) विदिशा (भिलसा) (१३) नासिक्य—चन्द्रप्रभ (१४) अन्तरिक्ष—पार्श्वनाथ (१५) कुलपाक—आदिनाथ (१६) खण्डगिरि (भुवनेश्वर) (१७) भवणबेलगोला इत्यादि अनेक जैन प्राचीन तीर्थ प्रसिद्ध हैं । इनमें जो विद्यमान हैं, उनमें कुछ तो मौलिक हैं तथा कतिपय प्राचीन तीर्थों के स्थानापन्न नवनिर्मित जिन चैत्यों के रूप में अवस्थित हैं । तीसरी श्रेणी के जैन तीर्थों को हम पौराणिक तीर्थ कहते हैं । इनका प्राचीन जैन साहित्य में वर्णन न होने पर भी कल्पों, जैन चरित्रग्रन्थों तथा प्राचीन स्तुति, स्तोत्रों में इनकी महिमा गायी गयी है ।

उक्त तीन वर्गों में से इस लेख में हम प्रथम वर्ग के सूत्रोक्त तीर्थों का ही संक्षेप में निरूपण करेंगे ।

सूत्रोक्त तीर्थ

आचारांग नियुक्ति की निम्नलिखित गाथाओं में प्राचीन जैन तीर्थों का नाम निर्देश मिलता है—

दंसण नाण चरित्ते तववेरग्गे य होई उ पसत्था ।

जा य तद्दा ता य तद्दा लवखणं बुच्छं सलवखणओ ॥३२६॥

तित्थगराण भगवओ पवयण पावयणि अइसइड्ढीणं ।

अभिगमण नमण दरिसण कित्तण संपअणा थुणणा ॥३३०॥

जम्माभिसेय निक्खमण चरण नाणुप्पया य निब्बाणे ।

दिय लोअभवण मंदर नंदीसर भोम सगरेसुं ॥३३१॥

अट्ठावयमुज्जिते गयणेपयए य धम्मचक्के य ।

पास रहावत्तगं चमरुप्पायं च वंदामि ॥३३२॥

अर्थात् दर्शन, सम्यक्त्व ज्ञान, चारित्र, तप, वैराग्य, विनय-विषयक भावनाएँ जिन कारणों से शुद्ध बनती हैं, उनको स्वलक्षणों के साथ कहूँगा ॥३२६॥

तीर्थंकर भगवन्तों के, उनके प्रवचन के, प्रवचन-प्रचारक प्रभावक आचार्यों के, केवल, मन-पर्यव, अवधिज्ञान, वैक्रयादि अतिशय लब्धिधारी मुनियों के सम्मुख जाने, नमस्कार करने, उनका दर्शन करने, उनके गुणों का कीर्तन करने, उनकी अन्न-वस्त्रादि से पूजा करने से दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वैराग्य सम्बन्धी गुणों की शुद्धि होती है ॥३३०॥

जन्म कल्याणक स्थान, जन्माभिषेक स्थान, दीक्षा स्थान, भ्रमणावस्था की बिहार भूमि, केवल ज्ञानोत्पत्ति का स्थान, और निर्वाण कल्याणक भूमि को तथा देवलोको असुरादि के भवन, मेरु पर्वत, नन्दीश्वर के चैत्यों और व्यन्तर देवों के भूमिस्थ नगरों में रही हुई जिन प्रतिमाओं को तथा (१) अष्टापद (२) उज्जयंत (३) गजाग्रपद (४) धर्मचक्र (५) अष्टिच्छत्रास्थित पार्श्वनाथ (६) रथावर्त-पद्मतीर्थ (७) चमरोत्पात इन नामों से प्रसिद्ध जैनतीर्थों में स्थित जिन प्रतिमाओं को मैं वन्दन करता हूँ ॥ ३३१-३३२ ॥

निर्युक्तिकार भगवान् भद्रबाहु स्वामी ने तीर्थंकर भगवन्तों के जन्म, दीक्षा, बिहार, ज्ञानोत्पत्ति, निर्वाण आदि के स्थानों को तीर्थ स्वरूप मानकर वहाँ रहे हुए जिन चैत्यों को वन्दन किया है। यही नहीं, परन्तु राजप्रशनीय, जीवाभिगम, स्थानांग, भगवती आदि सूत्रों में वर्णित देवलोक स्थित, असुर-भवन स्थित, मेरु-पर्वत स्थित, नन्दीश्वर द्वीप स्थित, और व्यन्तर देवों के भूमिगर्भ स्थित नगरों में रहे हुए चैत्यों की शाश्वत जिन प्रतिमाओं का भी वन्दन किया है।

निर्युक्ति की गाथा ३३२ में निर्युक्तिकार ने तत्कालीन भारतवर्ष में प्रसिद्ध पाए हुए सात अशाश्वत जैन तीर्थों को वन्दन किया है, जिनमें एक छोड़कर शेष सभी प्राचीन तीर्थ विच्छिन्न हो चुके हैं। फिर भी शास्त्रों तथा भ्रमण वृत्तान्तों में इनका जो वर्णन मिलता है, उनके आधार पर इनका यहाँ संक्षेप में निरूपण किया जाएगा।

(१) अष्टापद

अष्टापद पर्वत ऋषभदेवकालीन अयोध्या से उत्तर की दिशा में अवस्थित था। भगवान् ऋषभदेव जब कभी अयोध्या की तरफ पधारते तब अष्टापद पर्वत पर ठहरते थे और अयोध्यावासी राजा-प्रजा उनकी धर्म-सम्मा में दर्शन वन्दनार्थ तथा धर्म श्रवणार्थ जाते थे। परन्तु वर्तमानकालीन अयोध्या के उत्तर

दिशा भाग में ऐसा कोई पर्वत दृष्टिगोचर नहीं होता जिसे अष्टापद माना जा सके। इसके कारण अनेक ज्ञात होते हैं। पहला तो यह है कि उत्तरदिग् विभाग में भारत से लगी हुई पर्वत श्रेणियाँ उस समय में इतनी ठण्डी और हिमाच्छादित नहीं थीं, जितनी आज हैं। दूसरा कारण यह है कि अष्टापद पर्वत के शिखर पर भगवान् ऋषभदेव और उनके गणधर तथा अन्य शिष्यों का निर्वाण होने के बाद देवताओं ने तीन स्तूप और भरत चक्रवर्ती ने सिंहभिषवा नामक जिन चैत्य बनवाकर उसमें चौबीस तीर्थंकरों की वर्ण मानोपेत प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित करवा के, चैत्य के द्वारों पर लोहमय यान्त्रिक द्वारपाल स्थापित किए थे। इतना ही नहीं, पर्वतों को चारों ओर से झिलवाकर सामान्य भूमिगोचर मनुष्यों के लिए शिखर पर पहुँचना अशक्य बनवा दिया था। उसकी ऊँचाई के आठ भाग पर क्रमशः आठ मेखलाएँ बनवाई थीं। इसी कारण से पर्वत का अष्टापद यह नाम प्रचलित हुआ था। भगवान् ऋषभदेव के इस निर्वाण स्थान के दुर्गम बन जाने के बाद देव, विद्याधर, विद्याचारण, लक्ष्मिधारी मुनि और जंघाचारण मुनियों के सिवाय अन्य कोई भी दर्शनार्थी अष्टापद पर नहीं जा सकता था और इसी कारण से भगवान् महावीर स्वामी ने अपनी धर्मसभा में यह सूचन किया था कि जो मनुष्य अपनी आत्म शक्ति से अष्टापद पर्वत पर पहुँचता है वह इस भव संसार से मुक्त होता है।

अष्टापद के अप्राप्य होने का तीसरा कारण यह भी है कि सगर चक्रवर्ती के पुत्रों ने अष्टापद पर्वत स्थित जिन चैत्य, स्तूप आदि को अपने पूर्वज वंश्य भरत चक्रवर्ती के स्मारक के चारों तरफ गहरी खाई खुदवाकर उसे गंगा के जलप्रवाह से भरवा दिया था, ऐसा प्राचीन जैन कथा साहित्य में किया गया वर्णन आज भी उपलब्ध होता है।

उपर्युक्त अनेक कारणों से हमारा अष्टापद तीर्थ जिसका निर्देश भूत केवली भगवान् भद्रबाहु स्वामी ने अपनी आचारांग निर्युक्ति में सर्वप्रथम किया है, हमारे लिए आज अदर्शनीय और अलभ्य बन चुका है।

आचारांग निर्युक्ति के अतिरिक्त आवश्यक निर्युक्ति की निम्नलिखित गाथाओं से भी अष्टापद तीर्थ का विशेष परिचय मिलता है—

अह भगवं भवमंहणो पुष्पाजमण्यं सयसहस्सं ।
 अणुपुण्वि विहरिऊणं पत्तो अट्ठावयं सेलं ॥४३३॥
 अट्ठावयम्मि सेले चउइसभत्तेण सो महरिसीणं ।
 दसहिं सहस्सेहिं समं निव्वाणमणुत्तरं पत्तो ॥४३४॥

निष्वाणं १ चिद्वागिहं जिणस्स इक्खाग - सेसगाणं च ।

सकहा ३ धूम जिणहरे ४ जायग ५ तेणाऽहिअग्गिस्सि ॥४३५॥

तब संसार दुःख का अन्त करने वाले भगवान् ऋषभदेव सम्पूर्ण एक लाख पूर्व वर्षों तक पृथ्वी पर विहार करके अनुक्रम से अष्टापद पर्वत पर पहुँचे और छः उपवास के तप के अन्त में दस हजार मुनिगण के साथ सर्वोच्च निर्वाण को प्राप्त हुए ॥४३३-४३४॥

भगवान् और उनके शिष्यों के निर्वाणान्तर चतुर्निकायों के देवों ने आकर उनके शवों के अग्नि संस्कारार्थ तीन चिताएँ बनवायीं। पूर्व में गोलाकार चिता तीर्थंकर के शरीर के दाहार्थ, दक्षिण में त्रिकोणाकार चिता इक्ष्वाकुवंश्य गणधरों के तथा महासुनियों के शवदाहार्थ बनवाई और पश्चिम दिशा की तरफ चौकोर चिता शेष भ्रमणगण के शरीर संस्कारार्थ बनवाई, एवं तीर्थंकर आदि के शरीर यथास्थान चिताओं पर रखकर अग्नि कुमार देवों ने उन्हें अग्नि द्वारा सुलगाया, वायु कुमार देवों ने वायु द्वारा अग्नि को उद्दीप्त किया, और चर्म-मांस के जल जाने पर मेघकुमारों ने जलवृष्टि द्वारा चिताओं को ठण्डा किया। तब भगवान् के ऊपरी बायें जबड़े की शकेन्द्र ने, दाहिनी तरफ की ईशानेन्द्र ने, तथा नीचले जबड़े की बायीं तरफ की चमरेन्द्र ने, और दाहिनी तरफ की दाढ़े बलीन्द्र ने ग्रहण कीं। इन्द्रों के अतिरिक्त शेष देवों ने भगवान् के शरीर की अन्य अस्थियाँ ग्रहण कर लीं। तब वहाँ उपस्थित राजादि मनुष्यगण ने तीर्थंकर तथा सुनियों के शरीर दहन स्थानों की भस्मी को भी पवित्र जानकर ग्रहण कर लिया। चिताओं के स्थान पर देवों ने तीन स्तूप बनवाये, और भरत चक्रवर्ती ने चौबीस तीर्थंकरों की वर्णमानोपेत सपरिकर मूर्तियाँ स्थापित करने योग्य जिनगृह बनवाये। उस समय जिन मनुष्यों को चिताओं से अस्थि, भस्मादि नहीं मिला था, उन्होंने उसकी प्राप्ति के लिए देवों से बड़ी नम्रता के साथ याचना की, जिससे इस अवसर्पिणी काल में याचक शब्द प्रचलित हुआ। चिता कुण्डों में अग्नि चयन करने के कारण तीन कुण्डों में अग्नि स्थापना करने का प्रचार चला, और बैसा करने वाले आहिताग्नि कहलाए ॥ ४३५ ॥

उपर्युक्त सूत्रोक्त वर्णन के अतिरिक्त भी अष्टापद तीर्थ से सम्बन्ध रखने वाले अनेक वृत्तान्त सूत्रों, चरित्रों तथा (पौराणिक) प्रकीर्णक जैन ग्रन्थों में मिलते हैं। परन्तु इन सबके वर्णनों द्वारा विषय को बढ़ाना नहीं चाहते।

(२) उज्जयन्त (ऊर्जयन्त)

उज्जयन्त यह गिरनार पर्वत का प्राचीन नाम है, इसका दूसरा प्राचीन नाम रेवतक पर्वत भी है, 'गिरनार' यह इसका तीसरा पौराणिक नाम है जो कल्पों, कथाओं आदि में मिलता है।

उज्जयन्त तीर्थ का नाम निर्देश आचारांग-निर्युक्ति में किया गया है, जो ऊपर बता आए हैं। इसके अतिरिक्त कल्पसूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध, अष्टमाध्ययन), आवश्यक सूत्र आदि में भी इसके उल्लेख मिलते हैं। कल्पसूत्र में इस पर्वत पर भगवान् नेमिनाथ के दीक्षा, केवल-ज्ञान तथा निर्वाण नामक तीन कल्याणक होने का उल्लेख किया गया है। आवश्यक सूत्रान्तर्गत सिद्धस्तव की निम्नोद्धृत गाथा में भी भगवान् नेमिनाथ के दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण कल्याणक होने की सूचना मिलती है। जैसे—

उज्जित सेल सिंहरे दिक्खा नाणं निसीहिआ जस्स ।

तं धम्म चक्रवट्ठि अरिद्धनेमि नमंसामि ॥४॥

अर्थात् उज्जयन्त पर्वत के शिखर पर जिनकी दीक्षा, केवल ज्ञान और निर्वाण हुआ, उस धर्म-चक्रवर्ती भगवान् नेमिनाथ को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥

- सिद्धस्तव की यह तथा इसके बाद की "चत्तारिअट्ठ" यह दोनों गाथाएँ प्रक्षिप्त मालूम होती हैं। परन्तु यह कब और किसने प्रक्षिप्त की, यह कहना कठिन है। प्रभावक चरित्रान्तर्गत आचार्य बप्पभट्टि के प्रबन्ध में एक उपाख्यान है जिसका सारांश यह है कि 'एक समय शत्रु'जय (उज्जयन्त) तीर्थ की यात्रा के लिए राजा आम संघ लेकर उज्जयन्त की तलहटी में पहुँचा। वहाँ दिगम्बर जैन संघ भी आया हुआ था। उन्होंने आम को ऊपर जाने से रोका। तब आम सैनिक बल का प्रयोग करने को उद्यत हुआ तो बप्पभट्टिसूरि ने उसको रोककर कहा—धार्मिक कार्यों के निमित्त प्राणी संहार करना अनुचित है, इस झगड़े का निपटारा दूसरे प्रकार से होना चाहिये। उन्होंने कहा—दो कुमारी कन्याओं को बुलाना चाहिए, श्वेताम्बरों की कन्या दिगम्बर संघ के पास और दिगम्बर संघ की कन्या श्वेताम्बर संघ के पास रखी जाए। फिर दोनों संघ के अग्रसर धर्माचार्य, कन्याओं को तीर्थ का निर्णय करने के प्रमाण पृच्छें। आचार्य बप्पभट्टिसूरि ने श्वेताम्बर संघ की तरफ खड़ी दिगम्बर संघ की कन्या के मुख से अम्बिका देवी द्वारा (उज्जयन्त०) यह गाथा कहलायी और तीर्थ श्वेताम्बर सम्प्रदाय का स्थापित किया। परन्तु यह उपाख्यान ऐतिहासिक दृष्टि से

उज्जयंत तीर्थ के सम्बन्ध में अन्य भी अनेक सूत्रों तथा उनकी टीकाओं में उल्लेख मिलते हैं, परन्तु इन सबका यहाँ वर्णन न करके आचार्य जिन भ्रमसूत्रिकृत उज्जयंत महातीर्थ कल्प, तथा अन्य विद्वानों के रचे हुए प्रस्तुत तीर्थ के स्तव आदि के कतिपय उपयोगी उद्धरण देकर इस विषय का निरूपण करना ही पर्याप्त समझा जाता है ।

उज्जयंत पर्वत के अद्भुत खनिज पदार्थों से समृद्धिशाली होने के सम्बन्ध में आचार्य जिनभद्र ने अपने कल्प में बहुत-सी बातें कही हैं, जिनमें से कुछ एक मनोरंजक नमूने पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे दिए जाते हैं—

अवलोक्यप्रसिद्धरसिलाखवरेण तत्थ वररसो सखइ ।
 सुअपक्खसरिसवण्णो करेइ सुव्वं वरं हेमं ॥२७॥
 गिरिपुल्लुन्नवयारे अबिग्रयासमपयं च नामेण ।
 तत्थ वि पीआ पुहवी हिमवाए होइ वरहेमं ॥२८॥
 उज्जितपदमसिहरे आरुहिं दाहिणेन अवयरिं ॥
 तिण्णि घणसयमित्ते पूइकरं जं बिलं नाम ॥३०॥
 ऊरघाडिं बिलं दिक्खिऊ निरणेन तत्थ गंतव्वं ।
 दण्डंतराणि वारस दिव्वरसो अंबुलसरिसो ॥३१॥
 उज्जितेनाणसिला विक्खाया तत्थ अत्थि पाहाणं ।
 ताणं उत्तर पासे दाहणियअहसुहो विवरो ॥३६॥
 तस्स य दाहिणभाए दसण्णभूमीइ हिगुलयवण्णो ।
 अत्थ रसो सयवेही विघइ सुव्वं न संदेहो ॥३७॥
 इय उज्जयंतकप्पं अविअप्पं जो करेइ जिणभत्तो ।
 कोहंडिकयपणामो सो पावइ इच्छिअं सुव्वं ॥४१॥

वि० ती० क०, पृ० ८८-९ ।

मूल्यवान नहीं है क्योंकि आचार्य बप्पभट्टि विक्रम संवत् ८०० में जन्मे थे, और नवमी शताब्दी में उनका जीवन व्यतीत हुआ था तथा आचार्य हरिभद्रसूत्रिजी, जो इनके सौ वर्ष से अधिक पूर्ववर्ती थे, सिद्धस्तव की टीका में लिखते हैं कि सिद्धस्तव की आदि की तीन गाथाएँ नियमपूर्वक बोली जाती हैं । अन्तिम दो गाथाओं के बोलने का नियम नहीं है । इससे यह सिद्ध होता है कि यह गाथाएँ हैं तो हरिभद्रसूत्रिजी के पूर्वकाल की परन्तु है प्रक्षिप्त, इसलिए आचार्यों ने इनका बोलना अनियत बसलाया है । हरिभद्रसूत्रिजी के पूर्ववर्ती आचार्य हेमचन्द्रसूरि आदि ने भी अपने ग्रन्थों में यही आशय व्यक्त किया है ।

अर्थात्—अवलोकन शिखर की शिला के पच्छिम दिग् विभाग में शुक के पंख जैसा हरे रंग का बेषक रस झरता जाता है, जो ताम्र को श्रेष्ठ सुवर्ण बनाता है ॥ २७ ॥

उज्जयंत पर्वत के प्रसुम्नावतार तीर्थ स्थान में अम्बिकाभ्रमपद नामक वन है, जहाँ पर पीतवर्ण की मिट्टी पायी जाती है, जिसे तेज आग का ताप देने से बढ़िया सोना बनता है ॥ २८ ॥

उज्जयंत पर्वत के प्रथम शिखर पर चढ़कर दक्षिण दिशा में तीन सौ धनुष अर्थात् बारह सौ हाथ नीचे उतरना, वहाँ पूर्तिकरण नामक एक बिल अर्थात् भूविबर मिलेगा, उसको खोलकर सावधानी के साथ उसमें प्रवेश करना, और अड़तालीस हाथ तक भीतर जाने पर लोहे को सोना बनाने वाला दिव्य रस मिलेगा, जो जंबूफल सदृश रंग का होगा ॥ ३०-३१ ॥

उज्जयंत पर्वत पर 'ज्ञानशिला' नाम से प्रख्यात एक बड़ी शिला है, जिस पर गण्ड शैलों का एक जत्था लगा हुआ है। उससे उत्तर दिशा में जाने पर दक्षिण की तरफ जाने वाला एक अधोमुख विबर मिलेगा, उसमें चालीस हाथ नीचे उतरने पर दक्षिण भाग में हिंगुल का-सा रक्तवर्ण शतबेधी रस मिलेगा, जो ताम्बे को बेषकर सोना बनाता है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३६-३७ ॥

इस प्रकार जो जिनभक्त कुष्माण्डी (अम्बा) देवी को प्रणाम करके मन में शंका लाए बिना उज्जयंत पर्वत पर रसायन-कल्प साधना करेगा वह मनो-भिलाषित सुख को प्राप्त होगा ॥ ४१ ॥

जिनप्रभसुरि कृत उज्जयंत महाकल्प के अतिरिक्त अन्य भी अनेक कल्प और स्तव उपलब्ध होते हैं, जो पौराणिक होते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व के हैं।

रेवतकगिरि कल्प संक्षेप में इस तीर्थ के विषय में कहा गया है— भगवान् नेमिनाथ ने छत्रशिला के समीप शिलासन पर दीक्षा ग्रहण की, सहस्राब्द-वन में केवल-ज्ञान प्राप्त किया, लक्षाराम में धर्म देशना की, और अवलोकन नामक ऊँचे शिखर पर निर्वाण प्राप्त किया।

रेवत की मेखला में कृष्ण वासुदेव ने निष्क्रमण आदि तीन कल्याणकों का उत्सव करके रत्न प्रतिमाओं से शोभित तीन जिन चैत्य तथा एक अम्बादेवी का मन्दिर बनवाया।

रेवतकगिरि कल्प में कहा है—पच्छिम दिशा में सौराष्ट्र देश स्थित रेवत पर्वतराज के शिखर पर श्री नेमिनाथ का बहुत ऊँचे शिखरवाला भवन था,

जिसमें पहले भगवान नेमिनाथजी की लेपमयी प्रतिमा प्रतिष्ठित थी। एक समय उत्तरापथ के विभूषण समान कश्मीर देश से अजित तथा रत्ना नामक दो भाई संघपति बनकर गिरनार तीर्थ की यात्रा करने आए, और भक्तिवश केशर चन्दन आदि के धोल से कलशे भरकर उस प्रतिमा को अभिषिक्त किया। परिणामस्वरूप वह लेपमयी प्रतिमा लेप के गल जाने से बहुत ही बिगड़ गई। इस घटना से संघपति युगल बहुत दुःखी हुए और आहार का त्याग कर दिया। इक्कीस दिन के उपवास के अन्त में भगवती श्री अम्बिका देवी वहाँ प्रत्यक्ष हुई और संघपति को उठाया। उसने देवी को देखकर जय-जय शब्द किया। देवी ने संघपति को रत्नमयी प्रतिमा देते हुए कहा—लो यह प्रतिमा ले जाकर बैठा लो। पर प्रतिमा को स्थान पर बैठाने के पहले पीछे नहीं देखना। संघपति अजित सूत के कच्चे घागे के सहारे प्रतिमा को अन्दर ले जा रहा था। वह प्रतिमा के साथ नेमिभवन के सुवर्ण बलानक में पहुँचा, बिम्ब के द्वार की देहली के ऊपर पहुँचते ही संघपति का हृदय हर्ष से उमड़ पड़ा और देवी की शिक्षा को भूलकर सहसा उसका मुँह पिछली तरफ मुड़ गया, इससे प्रतिमा वहीं निश्चल हो गयी। देवी ने जय-जय शब्द के साथ पुष्पवृष्टि की। यह प्रतिमा संघपति द्वारा नव-निर्मित जिन प्रासाद में बैशाख शुक्ला पूर्णिमा को प्रतिष्ठित हुई। स्थापनादि महोत्सव करके संघपति अजित अपने भाई के साथ स्वदेश पहुँचा। कलिकाल में मनुष्य के चित्त की कलुषता जानकर अम्बिका देवी ने उस रत्नमय प्रतिमा की श्लमलाती कान्ति को ढाँप दिया।

इसी कल्प में इस तीर्थ सम्बन्धी अन्य भी ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं, जो नीचे दिए जाते हैं—

पुर्विं गुजरधराए जयसिंह देवेणं खंगाररायं हणित्ता सज्जनो दण्डाहिवो ठाविओ। तेण अ अहिणवं नेमिजिण्दिमवणं एगारससय पंचासिए (११८५) विक्रमराय वच्छुरे काराविअं। मालवदेस सुहमंडणेणं साहुभावणेणं सोवणं आमलसारं कारिअं। चोलुक चक्रिसिरिक्कुमारपालनरिदं संठाविअसोरट्ठ दण्डाहिवेण सिरिसिरिमालकुलुमवेण बारससयवीसे (१२२०) विक्रम संवच्छुरे पजा काराविआ””” । पजाए चंडतेहिं जेणेहिं दाहिणदिसाए लक्खारामो दीसइ।

अर्थात् पूर्वकाल में गुर्जर भूमिपति चालुक्य राजा जयसिंहदेव ने जूनागढ़ के राजा खंगार को मारकर दण्डाधिपति सज्जन को वहीं का शासक नियुक्त किया। सज्जन ने विक्रम संवत् ११८५ में भगवान नेमिनाथ का नया भवन बनवाया, बाद में मालव भूमिभूषण साधु भावड ने उस पर सुवर्णमय आमलसारक

बनवाया। चालुक्य चक्रवर्ती भी कुमारपालदेव नियुक्त भी भीपाल कुलोत्पन्न सौराष्ट्र दण्डाधिपति ने विक्रम संवत् १२२० में उज्जयंत पर्वत पर चढ़ने के लिए सोपानमय मार्ग करवाया और उसके पुत्र धवल ने सोपान मार्ग में प्याऊ बनवायी। इस मार्ग से ऊपर चढ़ने वाले यात्रिक जनों को दक्षिण दिशा में लक्षाराम नामक उद्यान दीखता है।

इन कल्पों के अतिरिक्त उज्जयंत तीर्थ के साथ सम्बन्ध रखने वाले अनेक स्तुति स्तोत्र भी भिन्न-भिन्न कवियों के बनाए हुए जैन ज्ञान भण्डारों में उपलब्ध होते हैं, जिनमें से थोड़े से श्लोक नीचे उद्धृत करके इस तीर्थ का वर्णन समाप्त करेंगे—

योजनद्वयतुंगेऽस्य शृंगे जिनगृहावलिः ।
 पुण्यराशिरिवाभाति शरच्चन्द्रा सुनिर्मला ॥ ४ ॥
 सौवर्णदंडकलशामलसारकशोभितम् ।
 चारुचेत्यं चकास्त्यस्योपरि भी नेमिनः प्रभुः ॥ ५ ॥
 भी शिवासुन्देवस्य पादुकात्र निरीक्षता ।
 स्पृष्टाऽर्चिता च शिष्टानां पाप-व्यूहं व्यपोहति ॥ ६ ॥
 प्राप्यराज्यं परित्यज्य जर - तृणामिव प्रभुः ।
 बन्धान् विधूय च स्निग्धान् प्रवेदेऽत्रमहाव्रतम् ॥ ७ ॥
 अत्रैव केवलं देवः स एव प्रतिलब्धवान् ।
 जगज्जनहितैषी स पर्यएषीच्च निवृत्तिम् ॥ ८ ॥

अर्थात् इस उज्जयंत गिरि के दो योजन ऊँचे शिखर बनवाने वालों की निर्मल पुण्य राशि की सी चन्द्र किरण जैसी उज्ज्वल जिन मंदिरों की पंक्ति सुशोभित है। उसी शिखर पर सुवर्णमय दण्ड, कलश तथा आमल सारक से सुशोभित भगवान नेमिनाथ का सुन्दर चैत्य दृष्टिगोचर हो रहा है। यहीं पर प्रतिष्ठित शैवेय जिनकी चरण पादुका दर्शन, स्पर्शन और पूजन से मातृक यात्रिगण के पाप को दूर करता है। यहीं पर जीर्ण तिनके की तरह समृद्ध राज्य तथा विशाल कुटुम्ब का त्याग कर भगवान नेमिनाथ ने महाव्रत धारण किए थे। यहीं पर भगवान् केवलज्ञानी हुए तथा जगहित चिन्तक भगवान नेमिनाथ ने यहीं से निर्वाण पद पाया।

[क्रमशः

जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ

[पूर्वानुवृत्ति]

गुजराती : कन्हैयालाल भाईशंकर दवे

अनुवाद : भँवरलाल नाहटा

यक्षेश्वर-यक्षनायक

यह अभिनंदन भगवान का यक्ष माना जाता है। इसका वर्ण श्याम, वाहन हाथी, हाथ चार हैं जिनमें से दाहिने दो में बीजोरा और माला एवं बाँयें दो में अंकुश और नकुल धारण किया होने का रूपावतार, त्रिशष्टि०, आचार दिनकर, निर्वाण कलिका और लोकप्रकाश में बतलाया गया है। प्रतिष्ठासारोद्धार इसके धनुष, ढाल, तलवार आदि आयुध होना सूचित करता है। इसी यक्ष को लोकप्रकाश तथा शिल्परत्नाकर में ईश्वर नाम से संबोधित किया गया है। यक्षेश्वर सभी यक्षों का अधिपति माने जाने से इसका वर्णन राजा जैसा दबदबादार होने की शास्त्रकारों ने कल्पना की है। यक्षों का प्रमुख कुबेर माना गया है और इस यक्ष का वर्णन भी कुबेर से मिलता जुलता मालूम देता है। बौद्ध सम्प्रदाय में कुबेर का स्थान जंभल ने लिया है, उसी के अनुरूप वर्णन जैन संप्रदाय में यक्षनायक का है।

यक्षनायक यक्ष की एक प्रतिमा शत्रुंजय के चोमुखजी की टोंक में, ऊपर के एक मंदिर के गवाक्ष में स्थापित है। उसमें उनके चार हाथ बरताए गए हैं जिनमें दो गोडों पर रखे हुए हैं और अन्य दो में आयुध हैं। वाहन के रूप में उनके पास हाथी को रखा गया है।

कालिका

यक्षेश्वर के साथ की यक्षिणी कालिका गिनी जाती है। इसका वर्ण और आयुध अधिकतर यक्ष के जैसा होने से वर्ण श्याम, पद्म पर विराजित और वरद, पाश, अंकुश और नाग धारण किए हुए चार हाथ होते हैं। दिग्गम्बर लोग इस यक्ष के साथ की यक्षिणी का नाम वज्रभृङ्गला देकर इसका वाहन हंस और चारों हाथ में नाग, पाश, अक्षमाला तथा फल होना बतलाते हैं। हिन्दू धर्म में काली और महाकाली ये तामस तत्व की मुख्य देवी मान्य होने से इसे तंत्र मार्ग में आत्मा से पहचाना जाता है। हिन्दू धर्म में काली देवी की सेकड़ों प्रतिमाएँ मिलती हैं किन्तु जैन यक्षिणी रूप में इसकी मूर्ति अभिनंदन स्वामी

के परिकर के अतिरिक्त क्वचित् ही देखी जाती है। बम्बई के प्रिन्स आफ् वेल्स म्युजियम में जैन यक्षिणी की एक प्रतिमा है जो काली की होना अनुमानित है। इसके चारों हाथों में विधानोक्त आयुध अंकुश, वरदमुद्रा, पाश और नाग धारण किया हुआ बतलाया गया है। इसके मस्तक पर नागफण होने से काली यक्षिणी कहना यह विचारणीय है। काली के मस्तक पर नागफण बनाने का विधान अज्ञात है किन्तु किसी प्राचीन ग्रन्थ में इसका उल्लेख होना संभव है। डा० सांकलिया ने इस मूर्ति के लिए तारावती, (कालि) कालिका या पद्मावती होने का तर्क किया है।^{२२} इस यक्षिणी की दूसरी एक प्रतिमा चौमुखजी की टूंक में जाते मार्ग में आती है। उसमें इसके चार हाथों में वरद, अंकुश, कमण्डल और कोई अस्पष्ट वस्तु है, हंसारूढ़ व्यक्त किया है। विद्यादेवियों में भी काली और वज्रखला दोनों की गणना होने से यक्षिणी और विद्यादेवी के रूप में जैन देवियों में इसका स्थान महत्वपूर्ण है।

तुंबरू

यह सुमतिनाथ भगवान का यक्ष है। इसका वर्ण श्वेत, वाहन गरुड़, हाथ चार हैं जिनमें वरद, शक्ति, गदा और नागपाश धारण किये होना विधानोक्त ग्रंथ में बतलाया गया है। दिगंबरों के कथनानुसार इसके चार हाथों में से दो में साँप, तीसरे में फल और चौथे में वरद मुद्रा बतलाकर इसके सर्प का यज्ञोपवीत का उल्लेख किया है। हिन्दू धर्म में तुंबरू को गंधर्व के रूप में देवों का वाद्य वादक बतलाया गया है। जैन सम्प्रदाय में इसे सुमतिनाथ भगवान का अनुचर बतलाते हुए आयुधों में कितना ही अंतर सूचित किया है।

आबू के लूणगवसही में दरवाजे के बाहर यक्ष की एक प्रतिमा है जिसके चार हाथ हैं और उपकरणों में गदा व शक्ति स्पष्ट है, अवशिष्ट दो अस्पष्ट होने से समझा नहीं जा सकता। चार हाथ धारी जैन यक्षों में गदा, आयुध केवल तुंबरू और मनुज यक्ष के ही बतलाया है। इनमें मनुज यक्ष के आयुध रूप में केवल गदा और अवशिष्ट उपकरण सूचित किए हैं। जबकि तुंबरू यक्ष के गदा, शक्ति और पाश ये तीन आयुध बतलाये गये हैं। उपर्युक्त लूणगवसही के बाहर वाली यक्षमूर्ति के दो आयुध गदा और शक्ति स्पष्ट मालूम पड़ने से इसका तुंबरू मूर्ति होना संभव है। इतिहास प्रेमी पृथ्वी श्री जयंत विजयजी महाराज ने 'आबू' नामक ग्रंथ में इस यक्ष मूर्ति के सुदगर और गदा दो आयुध

होना लिखा है।^{२३} पर गदा के साथ सुदगर की अपेक्षा शक्ति होनी चाहिए ऐसा यक्षों की शास्त्रीय मूर्ति विधान का आधार है। अतः यह प्रतिमा तुंबरू यक्ष का होना युक्तिसंगत लगता है। इसके अतिरिक्त तुंबरू यक्ष की छोटी बड़ी प्रतिमाएं सुमतिनाथ भगवान के परिकरों में ही प्राप्य है किन्तु स्वतंत्र प्रतिमा का गुजरात में अस्तित्व अज्ञात है।

महाकाली

तुंबरू यक्ष के साथ की शासन देवी महाकाली है। इसका वर्ण स्वर्णाम्, पद्म (कमल) पर बैठी हुई, चार हाथों में क्रमशः वरद, पाश, अंकुश और विजोरा धारण किया हुआ बतलाया गया है। दिगम्बर शास्त्रों के कथनानुसार इसका नाम पुरुषदत्ता, आयुधों में चक्र, वज्र, फल और वरद मुद्रा एवं वाहन के रूप में हाथी है। हिन्दू धर्मशास्त्रों में काली और महाकाली के अपर स्वरूपों की कल्पना नहीं की है, उसी प्रकार तात्विक दृष्टि से दोनों का स्वरूप भिन्न-भिन्न भी नहीं माना है जबकि जैन सम्प्रदाय में दोनों के भेद बतला कर आयुध और वाहन की भी भिन्न-भिन्न कल्पना की है। विद्यादेवी के विविध स्वरूपों में महाकाली का भी समावेश हुआ है। महाकाली की जैन यक्षिणी के रूप वाली प्रतिमाएं गुजरात में खास नहीं मिलती, किन्तु सुमतिनाथ भगवान के परिकरों में यक्ष के साथ कितने ही रूप मिलते हैं।

कुसुम

पद्मप्रभ भगवान के कुसुम यक्ष का वर्ण नील, वाहन मृग, चार हाथ—जिनमें अनुक्रम से विजोरा, अभय, अक्षसूत्र और नकुल धारण किया हुआ होता है। दिगम्बर लोग पद्मप्रभ के यक्ष का नाम पुष्प और चारों हाथों में भाला, वरद, ढाल और अभयमुद्रा बतलाते हैं। इस यक्ष की परिकरों के अतिरिक्त स्वतंत्र प्रतिमाओं का स्वतंत्र अस्तित्व गुजरात में अज्ञात है।

अच्युता

कुसुम यक्ष के साथ की यह यक्षिणी है। इसका वर्ण श्याम, नर वाहन और चार हाथ हैं। जिनमें क्रमशः वरद, बाण, अभय और धनुष होना रूपावतार-कारण बतलाया है। निर्वाण कलिकाकार बाण के बदले वीणा सूचित करते हैं। दिगम्बर लोग पद्मप्रभ की यक्षिणी मनोवेगा और उसका वाहन

२३ देखो—सुनिराज श्री जयन्त विजयजी सम्पादित आवू, भाग-१, पृ० १२५।

घोड़ा व चारों हाथों में क्रमशः तलवार, भाला, फल और वरद मुद्रा बतलाते हैं। इस यक्षिणी की भी पद्मप्रभ के परिकर के अतिरिक्त अन्य कोई प्रतिमा अनुपलब्ध है।

मातंग यक्ष

यह सुपार्श्वनाथ भगवान का यक्ष है। इसका वर्ण नील, वाहन हाथी, दाहिने दो हाथों में विल्वफल व पाश, और वाम हाथों में नकुल व अंकुश धारण किये हुए बतलाया गया है। विगम्बर प्रतिष्ठा सारोद्धार में उसका वाहन सिंह बतलाकर चार हाथों में दण्ड, शूल या भाला, स्वस्तिक मुद्रा और ध्वज निर्दिष्ट किया है किन्तु इसी सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाकार संग्रहकार उसके केवल दो हाथ और टेढ़ा मुँह होना बतलाते हैं।

मातंग यक्ष की दो प्रतिमाएँ शंखेश्वर जी के दूसरी देहरी में पञ्चावती देवी के उभय पक्ष में स्थापित है। उसमें इसके उक्त विधानानुसार आयुध और इसके वाहन हाथी को भी व्यक्त किया है। पाटन के सालवीबाड़ा जिला में त्रिपुरेश्वर महादेव मन्दिर के उत्तरीय गवाक्ष में एक यक्ष मूर्ति स्थापित है जिसके चार हाथ बनाकर उसमें विल्वफल या बिजोरा, अंकुश, पाश, सर्प रखकर पैरों के नीचे वाहन के रूप में दृश्य बतलाया है। इस मूर्ति में मातंग यक्ष के तीन आयुध तथा वाहन उसके विधानानुसार मिलता है, अतः वह मातंग यक्ष ही होगा। जिन भगवान के मुख्य चौबीस यक्षों में चार हाथ वाले बिजोरा व विल्व फल धारी केवल दो ही यक्ष हैं—एक मातंग और दूसरा यक्षेश्वर। इनमें यक्षेश्वर के विधानानुसार केवल दो ही आयुध मिलते हैं, अतः यह यक्षेश्वर की अपेक्षा मातंग यक्ष की प्रतिमा अवश्य ही होगी ऐसा लगता है। मूर्ति विधायक शिल्पी लोग आयुध या उपकरण बनाने में कितनी ही बार स्वतंत्रता बरतते थे। इसीसे इस मातंग यक्ष की प्रतिमा में नकुल के बदले सर्प बना दिया हो यह असंभव नहीं। इसके अलावा सुपार्श्वनाथ भगवान के परिकर में भी इस यक्ष की कितनी ही मूर्तियाँ मिलती हैं।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती ॥ फरवरी-मार्च १९८१

बाहुबली सहस्रान्दी विशेषांक

इस अंक में है 'आदियुग का महाप्राण व्यक्तित्व भगवान् ऋषभदेव' (उपाध्याय श्री अमर मुनि), 'अन्तर्द्वंद्व, अहिंसा का सत्ता और सन्यास के बीच' (जमनालाल जैन), 'महासती सुन्दरी' (उपाध्याय श्री अमर मुनि), 'योगीश्वर भगवान् महावीर' (आचार्य राजकुमार जैन), 'श्रवण बेलगोल और नारी' (डा० शान्ता भानावत), 'श्रवण बेलगोल : धार्मिक सामाजिक महत्व' (डा० नरेन्द्र भानावत), 'महान् शक्ति पुंज : बाहुबली' (श्री विनोद मुनि), 'आदि तीर्थंकर : भगवान् ऋषभदेव' (कुमुद विद्यालंकार), 'महायोगी भगवान् बाहुबली' (कृष्णानन्द शास्त्री), 'भगवती ब्राह्मी' (साध्वी श्री साधना), 'जैन आगम साहित्य में कृष्ण कथा' (डा० सुरारीलाल शर्मा)।

कुशल निदेश ॥ अप्रैल १९८१

इस अंक में है 'पंच परमेष्ठी नमस्कार' (उद्योतन सूरि : अनु० भँवरलाल नाहटा), 'भण्डारी नेमिचन्द्र और उनके षष्टिशतक की टीकायें' (अगरचन्द्र नाहटा), 'आत्म-साक्षात्कार का अनुभवक्रम' (श्री सहजानन्दघनजी महाराज), प्रभावक चरित्र 'श्री सूर्याचार्य' (श्री कल्याण विजयजी : अनु० भँवरलाल नाहटा), 'जैन धार्मिक शिक्षण शिविर, जीयागंज : अनुभूति छात्र-छात्राओं की' (कल्पना बोधरा)।

जैन जर्नल ॥ अप्रैल १९८१

इस अंक में है 'A Voyager' (Muni Sri Rupchandra), 'Gommata Colossus, Sravana Belgola' (S. K. Ramchandra Rao), 'Homage to Bahubali' (Jose Pereira), 'Gommatesvara Bahubali, The Great Saint' (U. P. Shah), 'The Story of Bharata and Bahubali' (Dalsukh Malvania), 'A Note on Some Bahubali Images from North India' (Maruti Nandan Prasad Tiwari), 'When We Remember Gommatesvara, The Lord of Purity and Harmony' (Paresh Chandra Das Gupta), 'A

Guide to Sravana Belgola Image of Gommatesvara* (K. Narayan Iyenger), 'The Voice for a Golden Past'.

जैन सिद्धान्त भास्कर/Jaina Antiquary ॥ दिसम्बर १९८०

इस अंक में है 'महान् सारस्वत अमियान' (डा० ज्योति प्रसाद जैन), 'हिन्दी जैन काव्य में व्यवहृत सप्त-तत्त्व-रूप' (डा० अरुणलता जैन), 'कुशल-लाम कुंत आगङ्गदत्त रास और अगङ्गदत्त कथा के अन्य प्राप्त रूप', 'प्राकृत व्याकरणों में अर्थवेद की विवक्षा से प्रेरित रूप भेद की प्रवृत्ति' (बसन्त कुमार म० भट्ट), 'उत्तर कन्नड़ का जैन धर्म' (पं० के० भुजबली शास्त्री), 'सीताहरण के विविध प्रसंग' (गणेश प्रसाद जैन), 'कला तथा संस्कृति में जैन अष्टमंगल' (डा० दिनेशचन्द्र अग्रवाल), 'Jainism and Purva-mimamsa : A Soteriological Comparison' (Arvinda Sharma), 'Jaina Authors and Their Works' (Dr. Jyoti Prasad Jain), 'A Note on Jaina Calendar' (Sajjan Singh Lishk and S. D. Sharma), 'Richard Pischel (1849-1901) : Outstanding Prakrit Scholar' (W. Morgenroth), 'Microfilms in Siddhanta Bhawan, Arrah' (S. K. Jain).

तुलसी प्रज्ञा ॥ फरवरी १९८१

इस अंक में है 'जैन आचार मीमांसा : एक पुनर्मूल्यांकन' (डा० दयाचन्द भार्गव), 'बौद्ध दर्शन की शास्त्रीय समीक्षा : जैन ग्रंथों के आधार पर' (डा० रमेशचन्द्र जैन), 'Ahimsa as Political Force in Indian History' (Dr. Jyoti Prasad Jain), 'Does the Syadvada of the Jainas Really Involve a Ninefold Rather than a Sevenfold System of Predication ?' (Arvind Sharma).

श्रमण ॥ अप्रैल १९८१

इस अंक में है 'महावीर दर्शन, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में' (डा० सागरमल जैन), 'महावीर का अखण्ड व्यक्तित्व' (उपाध्याय श्री अमरसुनि), 'भगवान् महावीर का उपदेश और आधुनिक समाज' (दलसुख मालवणिया), 'महावीर की वाणी' (कपूरचन्द जैन), 'महावीर का संयम और उनका साधनामय जीवन' (सविता जैन), 'मनुज प्रकृति से शाकाहारी' (डा० महेन्द्रसागर प्रचंडिया) ।

Vol. V No. 1 : Titthayara : May 1981
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001